संपादकीय

पिछले दिनों में अलग-अलग समय पर आई खबरें यह बताती हैं कि देश के सरकारी स्कूलों में लगभग 10 लाख शिक्षकों की कमी है। ''लोकसभा में 5 दिसंबर को केंद्रीय मानव संसाधन मंत्री द्वारा पेश किए आंकड़ों से पता चलता है कि सरकारी प्राथमिक स्कूलों में 18 प्रतिशत और सरकारी माध्यमिक स्कूलों में 15 प्रतिशत शिक्षकों के पद रिक्त पड़े हैं।'' ...''देश भर में 60 लाख शिक्षकों के पद स्वीकृत हैं, जिनमें 9 लाख प्राथमिक स्कूलों में और 1 लाख माध्यमिक स्कूलों में खाली पड़े हैं। अगर दोनों तरह के स्कूलों में शिक्षकों के रिक्त पदों को जोड़ दिया जाए तो 10 लाख होते हैं।''[1] यानी स्कूलों में स्वीकृत कुल पदों का छठा भाग रिक्त है। सवाल यह है कि इस तरह की खबरों से आशय क्या लिया जाए?

आने वाले समय में किसी समाज की दशा क्या रूप लेने जा रही है इसे भांपने का एक बेहतर तरीका यह हो सकता है कि उसके स्कूलों के हालातों पर एक नजर डाल ली जाए। इस नजर से देखें तो उक्त स्थिति हमारे लिए किसी बेहतर कल की उम्मीद जगाने की बजाए एक अफसोसजनक तस्वीर पेश करती है।

जब हम शिक्षा शब्द का इस्तेमाल करते हैं तो यह एक प्रक्रिया का बोध करवाता है। इस प्रक्रिया के घटित होने के लिए कम से कम दो पक्षों की जरूरत होती है। एक वह जो सीखने वाला है यानी छात्र और एक वह जो सीखने में मददगार है यानी शिक्षक। एक तीसरा आयाम इसमें उस स्थान का जुड़ जाता है जहां यह प्रक्रिया इन दोनों के बीच घटित होती है लेकिन उसका महत्व इन दोनों के होने से ही संभव होता है। उक्त आंकड़े हमें बताते हैं शिक्षा नामक इस प्रक्रिया के एक महत्वपूर्ण पक्ष यानी शिक्षक के जितने पद स्वीकृत हैं उसका छठा भाग रिक्त है। अर्थात स्वीकृत पदों में से हर छठा पद रिक्त है। प्राथमिक स्कूलों में यह आंकड़ा 18 प्रतिशत पद रिक्त होने का है यानी हर पांचवां या छठा पद रिक्त है। यह एक तरह से गणितीय ढंग से इन आंकड़ों की व्याख्या है। सामाजिक हकीकत इससे और जटिल है। शहरों के या शहरों के नजदीक के स्कूलों में शिक्षकों की संख्या अक्सर जरूरत से ज्यादा पाई जाती है जबकि गांव या दूरदराज के स्कूल सूने रह जाते हैं वहां शिक्षक के अभाव में बच्चे बैठे रहते हैं उनका समय बर्बाद होता रहता है और कुछ समय बाद वे या तो स्कूल बदल लेते हैं या पढ़ाई छोड़ देते हैं।

कानूनी नज़रिए से देखें तो शिक्षा का अधिकार कानून[2] में शिक्षकों की नियुक्ति को लेकर निम्न प्रावधान हैं-

कक्षा 1 से 5 तक के लिए :	
नामांकित बच्चों की संख्या	**शिक्षकों की संख्या**
60 बच्चों तक	दो शिक्षक
61 से 90 बच्चों तक	तीन शिक्षक
91 से 120 बच्चों तक	चार शिक्षक
121 से 200 बच्चों तक	पांच शिक्षक
150 से ज्यादा बच्चे होने पर	पांच शिक्षक व एक प्रधानाध्यापक
200 से ज्यादा बच्चे होने पर	छात्र–शिक्षक अनुपात 40 से अधिक नहीं होना चाहिए (प्रधानाध्यापक इनके अलावा होगा)

कक्षा 6 से 8 तक के लिए:

1. हर कक्षा के लिए कम से कम एक अध्यापक इस तरह हो कि निम्न में से प्रत्येक लिए एक शिक्षक उपलब्ध हो सके-
   - विज्ञान और गणित
   - सामाजिक विज्ञान
   - भाषा
2. हर 35 बच्चों पर एक शिक्षक हो

3. जहां 100 से ज्यादा बच्चे नामांकित हों वहां-

- एक पूर्णकालिक प्रधानाध्यापक हो
- निम्न के लिए अंशकालिक इंस्ट्रक्टर हो-
  - कला शिक्षा
  - स्वास्थ्य एवं शारीरिक शिक्षा
  - कार्य शिक्षा

हम देख सकते हैं कि शिक्षकों के जितने पद रिक्त हैं उसके हिसाब से अगर न्यूनतम छात्र संख्या (60 बच्चों के लिए 2 शिक्षक) को भी ध्यान में रखें तो हर तीसरा प्राथमिक स्कूल ऐसा होगा जिसमें एक शिक्षक की कमी होगी और एक भी उच्च प्राथमिक विद्यायल ऐसा नहीं होगा जिसमें पूरे शिक्षक हो सकें (क्योंकि उच्च प्राथमिक स्कूल में प्राथमिक कक्षाएं भी साथ में होंगी)।

आधुनिक समय में स्कूल औपचारिक शिक्षा पाने की सांस्थानिक जगह है। हमारे देश के संदर्भ में सरकारी स्कूल वह संस्था है जो सार्वजिनक शिक्षा मुहैया करवाती है। शिक्षा से यह उम्मीद की जाती है कि वह बेहतर नागरिक बनाएगी। यहां नागरिक शब्द के साथ यह जो विशेषण है 'बेहतर' इसे हम समाज के संदर्भ में परिभाषित कर सकते हैं। हमारे जैसे लोकतांत्रिक देश के संदर्भ में इसे विवेकशील नागरिक के तौर पर परिभाषित कर सकते हैं। यानी एक ऐसा व्यक्ति जो विचार से, कर्म से स्वायत्त हो अर्थात अपने निर्णय लेने के लिए विचार और कर्म दोनों स्तरों पर किसी दूसरे पर निर्भर ना रहे। इस बात के निहितार्थ क्या हैं इसे हम देश में बन रही किसी नीति के संदर्भ में इस तरह समझ सकते हैं- विचार के स्तर पर स्वायत्त होने का आशय है कि शिक्षा लोगों में यह यह समझ विकसित करेगी कि वे देश में बनने वाली किसी नीति को समझ सकेंगे व उसके होने वाले असर को भांप सकेंगे। कर्म के स्तर पर स्वायत्त होने का आशय है कि वे उस नीति के निर्माण के वक्त उसे सही दिशा देने के लिए अपनी आवाज विभिन्न माध्यमों के जरिए उठा पाएंगे। मगर ऐसी पंगु शिक्षा व्यवस्था से क्या उम्मीद करें जो खुद अभी अपने पैरों पर डगमगाती सी खड़ी है।

यह खबर का एक पक्ष है इसी के बरक्स समायोजन के नाम पर स्कूलों के बंद किए जाने की वे खबरें भी समय-समय पर आती रहती हैं जिनकी वजह से गांव, ढाणी, मगरे, पुरवे स्कूल विहीन होते जा रहे हैं। एक तरफ शिक्षकों के रिक्त पद हैं, दूसरी ओर समायोजन के नाम पर स्कूलों का बंद कर दिया जाना है। स्कूल बंद हो जाने से धीरे-धीरे शिक्षकों के यह रिक्त पद उतने अनुपात में नहीं बचेंगे जितने अनुपात में आज रिक्त हैं। और ऐसे स्कूलों की संख्या स्कूलों के समायोजित होते चले जाने पर लगातार घटती जाएगी और सरकार बिना शिक्षक नियुक्त किए या कम संख्या में शिक्षक नियुक्त किए अपनी जिम्मेदारी से पीछा छुड़ा लेगी।

स्थिति यह है कि लंबे समय तक शिक्षकों की भर्ती को लंबित रख कर पहले स्कूलों को शिक्षकों की कम संख्या के चलते इस स्थिति में पहुंचने दिया जाता है कि स्कूल में पढ़ाई होना मुश्किल हो जाए। इसका असर धीरे-धीरे वहां की उपस्थिति पर पड़ने लगता है, वहां के नामांकन पर पड़ने लगता है। ऐसे में जरा भी समर्थ व सचेत अभिभावक अपने बच्चों के लिए दूसरे स्कूल की व्यवस्था कर लेते हैं और अंत में एक ऐसा समूह बचा रह जाता है जिसके लिए कहीं भी जाना मुमकिन नहीं, जिसकी आवाज उठाने वाला कोई नहीं, जिसकी आवाज कहीं सुनी नहीं जाती, वह फिर स्कूल ही त्याग देता है। स्कूलों में बच्चों की संख्या लगातार कम होती चली जाती है। और सरकार अंत में उन्हें बच्चों की संख्या कम होने का बहाना बनाकर समायोजन के नाम पर बंद कर देती है। यह एक ऐसा चक्र बनता जा रहा है जो दुश्चक्र की तरह हमारी सार्वजनिक शिक्षा व्यवस्था में व्याप्त होता जा रहा है। ◆

संदर्भ

1. http://www.patrika.com/news/miscellenous-india/there-are-10-lakh-teachers-jobs-vacant-in-govt-school-1462318/

   http://epaper.bhaskar.com/detail/1186815/43023043600/0/map/tabs-1/04-30-2017/14/3/image/

2. Right of Children to Free and Compulsory Education (RTE) Act, 2009.